International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 10-10-2025, Accepted: 09-11-2025, Published: 24-11-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 99-102

प्रेमचंद के उपन्यासों में यथार्थवाद तथा समाज–सुधार की चेतना

विशाल प्रताप मित्र
हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
मुंशी प्रेमचंद हिंदी साहित्य में यथार्थवादी धारा के सर्वाधिक सशक्त प्रतिनिधि माने जाते हैं जिनकी रचनाएँ बीसवीं सदी के आरंभिक भारतीय समाज की जीवंत अनुभूति कराती हैं। उनके उपन्यास केवल कथा नहीं, समाज की चेतना एवं सुधार का दर्पण भी हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में गोदान, सेवासदन, निर्मला, रंगभूमि जैसे उपन्यासों के माध्यम से प्रेमचंद के यथार्थवाद के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करने का प्रयत्न मात्र किया गया है। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेमचंद ने किसानों, स्त्रियों तथा वंचित वर्गों के संघर्ष को केवल चित्रित ही नहीं किया अपितु उन्हें सामाजिक परिवर्तन की चेतना का प्रतीक भी बनाया। उनका यथार्थवाद निःसंग वर्णन नहीं बल्कि नैतिक एवं सुधारात्मक है जो संवेदना, नैतिक जागरण तथा समाज–परिवर्तन की आकांक्षा से जुड़ा है। उनके पात्र यथा होरी, निर्मला, सुमन और सूरदास आदर्श एवं यथार्थ, आशा और संघर्ष तथा सुधार और प्रतिरोध के जीवंत प्रतीक बन जाते हैं। साहित्य और समाजशास्त्र के संगम पर खड़ा यह अध्ययन यह सिद्ध करता है कि प्रेमचंद का यथार्थवाद केवल समाज का दर्पण नहीं अपितु परिवर्तन का प्रेरक माध्यम भी है।

मूल शब्दः यथार्थवाद, समाज–सुधार, वर्ग और जाति, स्त्री–प्रतिनिधित्व, गांधीवादी नैतिकता, ग्रामीण जीवन, समाजशास्त्रीय व्याख्या

भूमिका
मुंशी प्रेमचंद (1880–1936) हिंदी साहित्य में यथार्थवादी परंपरा के प्रणेता माने जाते हैं जिन्होंने साहित्य को केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति अथवा मनोरंजन का माध्यम मात्र नहीं अपितु सामाजिक चेतना एवं सुधार का उपकरण बनाया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि "साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, अपितु जीवन की समस्याओं का समाधान भी है" (प्रेमचंद, 1936)। उनके लेखन की विशेषता यह है कि उन्होंने समाज के वास्तविक जीवन को उसकी समस्त जटिलताओं, विसंगतियों, संघर्षों आदि के साथ प्रस्तुत किया। उनके उपन्यासों में किसान, स्त्रियाँ, निम्नवर्ग तथा उपेक्षित वर्गों की पीड़ा, शोषण एवं संघर्ष का ऐसा जीवंत चित्रण मिलता है जो भारतीय समाज की आत्मा को उद्घाटित करता है। बीसवीं सदी के भारत में जब सामंती व्यवस्था, पितृसत्तात्मकता, जातिगत भेदभाव, औपनिवेशिक शोषण अपने चरम पर था तब प्रेमचंद ने गोदान, निर्मला, सेवासदन और रंगभूमि जैसे उपन्यासों के माध्यम से इन विषयों को समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रस्तुत किया। गोदान का होरी भारतीय किसान की अस्मिता के साथ ही उसकी विवशता का प्रतीक है तो निर्मला की नायिका स्त्री की उस वेदना की प्रतिनिधि है जो सामाजिक अन्याय और नैतिक पतन से उत्पन्न होती है। सेवासदन में उन्होंने स्त्री–स्वतंत्रता और नारी–शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया जबकि रंगभूमि में सूरदास के माध्यम से सामाजिक विषमता तथा पूंजीवादी शोषण का विरोध किया गया। उनके पात्र जीवित समाज की तरह बहुआयामी हैं यथा वे नायक नहीं अपितु संघर्षरत साधारण मनुष्य हैं, जिनके माध्यम से समाज का पूरा यथार्थ उद्घाटित होता है (शर्मा, 1953)। प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य प्रेमचंद के उपन्यासों में निहित यथार्थवाद तथा समाज–सुधार की चेतना को समाजशास्त्रीय–साहित्यिक दृष्टि से विश्लेषित करना है। यह साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों की पड़ताल करते हुए यह स्पष्ट करता है कि प्रेमचंद का यथार्थवाद केवल घटनाओं का चित्रण नहीं बल्कि परिवर्तन की आकांक्षा है। अध्ययन की पद्धति गुणात्मक विश्लेषण पर आधारित है जिसमें प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यासों, आलोचनात्मक ग्रंथों एवं समकालीन संदर्भों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। इस प्रकार प्रेमचंद के लेखन को भारतीय समाज के नैतिक पुनर्जागरण और सामाजिक परिवर्तन की चेतना से जुड़ी एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है जहाँ साहित्य स्वयं समाज के रूपांतरण का सशक्त माध्यम बन जाता है।

यथार्थवाद की संकल्पना और प्रेमचंद की साहित्यिक दृष्टि
यथार्थवाद साहित्य की वह प्रवृत्ति है जो जीवन को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करती है न उसमें किसी प्रकार का कृत्रिम अलंकरण होता है और न ही कल्पना का अतिरेक। इसका मूल उद्देश्य है समाज तथा मनुष्य के जीवन को उसके वास्तविक परिवेश में दिखाना जिससे कि पाठक को अपने युग, अपनी परिस्थितियों और अपने समाज का साक्षात्कार हो सके। पश्चिमी साहित्य में यथार्थवाद की नींव बाल्ज़ाक एवं टॉल्स्टॉय जैसे लेखकों ने रखी जिन्होंने समाज के आर्थिक–नैतिक संघर्षों को गहन संवेदना के साथ प्रस्तुत किया किंतु भारतीय परिप्रेक्ष्य में यथार्थवाद केवल बाह्य जगत का चित्रण नहीं अपितु सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक पुनर्जागरण का माध्यम भी रहा है। इस परंपरा के सर्वाधिक सशक्त प्रतिनिधि मुंशी प्रेमचंद हैं जिन्होंने कहा था "हमारा साहित्य जनता के जीवन से पृथक नहीं हो सकता" (प्रेमचंद, 1936)। उनके अनुसार साहित्य का मूल्य इस बात में है कि वह जनता के दुख–दर्द, आकांक्षाओं, संघर्षों आदि को कितनी सच्चाई से प्रकट करता है। प्रेमचंद के साहित्य में यथार्थ और आदर्श का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है यथा वे जीवन के कठोर यथार्थ को चित्रित करते हुए भी उसमें सुधार की संभावना तलाशते हैं। सेवासदन (1918) में उन्होंने वेश्या–समस्या के माध्यम से स्त्री की सामाजिक स्थिति तथा उसके नैतिक संघर्ष को अत्यंत यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया। सुमन का चरित्र समाज की नैतिकता और स्त्री की अस्मिता के द्वंद्व को उजागर करता है जो उस समय के समाज में व्यापक था। निर्मला (1926) में प्रेमचंद ने बाल–विवाह, दहेज–प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों के कारण उत्पन्न पारिवारिक त्रासदी को चित्रित किया, जहाँ स्त्री–जीवन के प्रति समाज की अमानवीयता सामने आती है। वहीं गोदान (1936) में किसान होरी की कहानी केवल एक व्यक्ति की नहीं बल्कि समूचे ग्रामीण भारत की आर्थिक शोषण एवं नैतिक विडंबना की कहानी बन जाती है। होरी का संघर्ष, उसकी श्रद्धा और अंततः उसकी मृत्यु भारतीय किसान के

सामूहिक यथार्थ का प्रतीक है (शर्मा, 1953)। प्रेमचंद के यथार्थवाद में केवल समाज की पीड़ा नहीं, उसमें परिवर्तन की आकांक्षा भी अंतर्निहित है। वे न तो निराशावादी हैं और न ही उपदेशात्मक; उनका यथार्थ मानवतावादी है जो मनुष्य के दुःख में उसकी करुणा खोजता है और समाज के पतन में सुधार की संभावना। प्रेमचंद का यथार्थवाद इसलिए विशिष्ट है कि वह भारतीय जीवन के नैतिक–आध्यात्मिक–सामाजिक पक्षों को एक साथ जोड़ता है और इसीलिए उनका साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना अपने समय में था।

प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के आयाम

प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ के विविध आयाम भारतीय समाज की जटिल संरचना को उसकी संपूर्णता में उद्घाटित करते हैं। उन्होंने समाज के आर्थिक, वर्गीय, जातिगत, लैंगिक तथा सांस्कृतिक अंतर्विरोधों को इस गहनता से चित्रित किया कि उनका साहित्य बीसवीं सदी के भारत का समाजशास्त्रीय दस्तावेज़ बन गया। सबसे पहले उनके साहित्य में आर्थिक–वर्गीय यथार्थ की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। गोदान (1936) में होरी का चरित्र भारतीय किसान की उस शोषित छवि का प्रतीक है जो जीवन भर श्रम करता है परंतु गरीबी, कर्ज़, सामाजिक अन्याय आदि से मुक्त नहीं हो पाता। राय साहब, खन्ना और महाजन जैसे पात्र पूंजीवाद तथा जमींदारी के उस शोषक तंत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं जो श्रम को दबाकर समाज में असमानता को स्थायी बनाते हैं (अग्रवाल, 1982)। प्रेमचंद ने आर्थिक यथार्थ को केवल वर्ग संघर्ष मात्र के रूप में नहीं अपितु नैतिक प्रश्न के रूप में भी देखा जहाँ मनुष्य की गरिमा लगातार बाज़ार एवं सत्ता के बीच कुचली जाती है। इसी तरह रंगभूमि (1932) में सूरदास जो एक अंध और निर्धन भिखारी है औद्योगिकीकरण–पूंजीवादी स्वार्थ के विरुद्ध नैतिक प्रतिरोध का प्रतीक बन जाता है। उसका संघर्ष केवल भूमि के अधिकार का नहीं अपितु मानवीय मूल्य और स्वाभिमान के पुनर्स्थापन का भी है। प्रेमाश्रम (1921) में उन्होंने किसानों के विद्रोह और सामंती शोषण के विरुद्ध जनचेतना के उदय को चित्रित किया जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद का यथार्थवाद जनसंघर्ष और सामाजिक क्रांति से गहराई से जुड़ा हुआ है। जातिगत विषमता के संदर्भ में प्रेमचंद ने भारतीय समाज के उस क्रूर यथार्थ को सामने रखा जहाँ अछूतों और दलितों को न केवल आर्थिक रूप से बल्कि सामाजिक और धार्मिक रूप से भी वंचित रखा गया। रंगभूमि के सूरदास का संघर्ष इस असमानता के विरुद्ध सामूहिक आवाज़ बन जाता है। लैंगिक यथार्थ के स्तर पर निर्मला (1926) तथा सेवासदन (1918) उल्लेखनीय हैं। निर्मला बाल–विवाह, दहेज–प्रथा और स्त्री–बलिदान की त्रासदी का चित्रण करती है, जिसमें स्त्री–जीवन की असमानता एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था की विडंबना उजागर होती है। वहीं सेवासदन में सुमन का चरित्र नारी–स्वतंत्रता और नैतिकता के द्वंद्व का प्रतीक है जहाँ वह उस समाज का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें स्त्री अपने अस्तित्व हेतु संघर्षरत है तथा नैतिक पुनर्जागरण की चाह रखती है। प्रेमचंद के लिए स्त्री केवल सहानुभूति का विषय नहीं बल्कि परिवर्तन की वाहक शक्ति है। इसी तरह उनके उपन्यासों में शहरी–ग्रामीण जीवन का अंतर्विरोध भी स्पष्ट रूप से उभरता है। कर्मभूमि (1932) में उन्होंने शिक्षा और राजनीति के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा को व्यक्त किया, जहाँ शहर आधुनिक मूल्यों का प्रतीक है तो गाँव परंपरा, नैतिकता और सामुदायिकता का। यह संघर्ष भारतीय समाज के संक्रमणकालीन चरित्र को प्रकट करता है जिसमें नई चेतना तथा पुरानी जड़ता आमने–सामने खड़ी हैं। इस तरह प्रेमचंद का यथार्थ समाज के प्रत्येक स्तर को स्पर्श करता है आर्थिक संरचना से लेकर नैतिक चेतना तक और यही उनकी साहित्यिक दृष्टि को सार्वभौमिक बनाता है। उनका समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण इस विश्वास पर आधारित था कि साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं बल्कि उसके परिवर्तन का माध्यम भी हो सकता है।

समाज–सुधार की चेतना

प्रेमचंद के साहित्य में समाज–सुधार की चेतना उस युगीन यथार्थ से गहराई से जुड़ी हुई है जब भारत औपनिवेशिक दासता, सामाजिक विषमता तथा नैतिक अवनति के दौर से गुजर रहा था। प्रेमचंद का लेखन मात्र साहित्यिक नहीं, सामाजिक जागरण का आंदोलन भी था। वे अपने समय के ब्राह्म समाज, आर्य समाज और गांधीवादी सुधारवादी आंदोलनों से वैचारिक रूप से प्रभावित थे जिनका उद्देश्य था सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन और मनुष्य में नैतिकता तथा समानता की भावना का पुनर्जागरण। प्रेमचंद ने स्वयं कहा था, "हमारा कर्तव्य केवल अन्याय का वर्णन करना नहीं, अपितु उसके विरोध का मार्ग दिखाना भी है" (सिंह, 1971)। यही वाक्य उनके संपूर्ण साहित्यिक दृष्टिकोण का सार है। उन्होंने अपने उपन्यासों में धार्मिक अंधविश्वास, सामाजिक अन्याय, लैंगिक असमानता के साथ ही वर्ग–भेद के विरुद्ध सशक्त आवाज़ उठाई। उनके अनुसार, साहित्य का कार्य केवल समाज का दर्पण बनना नहीं है, समाज के नैतिक–मानवीय विकास की दिशा भी निर्धारित करना है। इस दृष्टि से देखा जाए तो प्रेमचंद का यथार्थवाद नैतिक यथार्थवाद था जिसमें समाज की त्रासदियों के साथ सुधार की आकांक्षा भी निहित है। उनके उपन्यास सेवासदन (1918) इस दृष्टिकोण का प्रथम सशक्त उदाहरण है जिसमें स्त्री–शिक्षा, नैतिक उद्धार और सामाजिक पुनर्निर्माण की चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। सुमन का चरित्र उस स्त्री की प्रतीकात्मक छवि है जो समाज की नैतिकता और अपनी अस्मिता के बीच संघर्ष करती है। वेश्यावृत्ति की समस्या को प्रेमचंद ने न तो केवल सहानुभूति के स्तर पर देखा, न ही निंदा के रूप में, अपितु इसे सामाजिक संरचना की देन बताया जिसमें स्त्री को समान अवसर एवं सम्मान नहीं मिलता। सुमन का अंत नारी–स्वतंत्रता की चेतना का उद्घोष बन जाता है जहाँ स्त्री अपने आत्मसम्मान तथा नैतिक उद्धार हेतु स्वयं जिम्मेदारी लेती है (सिंह, 1971)। इसी तरह कर्मभूमि (1932) प्रेमचंद के गांधीवादी प्रभाव को प्रत्यक्ष रूप में दर्शाता है। इस उपन्यास में अमर कुमार का चरित्र आत्मसंयम, सत्य और सेवा के उन मूल्यों का प्रतीक है जो गांधीवाद के केंद्र में थे। यहाँ प्रेमचंद ने राजनीतिक स्वतंत्रता से अधिक सामाजिक–नैतिक स्वतंत्रता को प्राथमिकता दी है। वे मानते थे कि केवल राजनीतिक आज़ादी पर्याप्त नहीं है, जब तक समाज जाति, धर्म, वर्ग आदि के बंधनों से मुक्त नहीं होता। कर्मभूमि के पात्र शिक्षा और सेवा के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं जिससे यह उपन्यास सुधारवादी चेतना का सशक्त दस्तावेज़ बन जाता है। गांधीवादी विचारधारा का यह प्रभाव प्रेमचंद के अन्य लेखन में भी परिलक्षित होता है जहाँ उन्होंने हिंसा के विरुद्ध प्रेम, स्वार्थ के स्थान पर त्याग एवं विभाजन के बजाय एकता को साहित्य का आधार बनाया (गुप्ता, 2000)। रंगभूमि (1932) में प्रेमचंद ने औद्योगिकीकरण और मानवीय मूल्यों के संघर्ष को चित्रित किया। सूरदास का चरित्र यहाँ केवल एक अंध भिखारी का नहीं अपितु पूंजीवादी लालच और औपनिवेशिक अन्याय के विरुद्ध खड़े नैतिक बल का प्रतीक है। सूरदास का संघर्ष भूमि, श्रम और आत्मसम्मान के अधिकार के लिए है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने उस औद्योगिक आधुनिकता की आलोचना की है जो मनुष्य के श्रम और संवेदना दोनों का शोषण करती है। उन्होंने यह दिखाया कि आधुनिकता का अर्थ केवल आर्थिक विकास मात्र नहीं, उसमें नैतिक और मानवीय संतुलन भी होना चाहिए। इस प्रकार रंगभूमि आधुनिक सभ्यता और नैतिकता के द्वंद्व का गहरा समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। गोदान (1936) प्रेमचंद के सुधारवादी

चिंतन की चरम परिणति है। यह केवल किसान जीवन की त्रासदी भर के नहीं अपितु भारतीय समाज के वर्ग–संघर्ष, नैतिक पतन और सुधार की आकांक्षा का प्रतीकात्मक आख्यान है। होरी का संघर्ष आर्थिक ही नहीं, नैतिक भी है वह अपने परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यनिष्ठ रहते हुए भी शोषण की व्यवस्था का शिकार बनता है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में यह दिखाया कि भारतीय किसान आर्थिक सहायता का भर का नहीं नैतिक पुनर्जागरण का भी आकांक्षी है। उन्होंने किसान के उद्धार को समाज–सुधार के केंद्र में रखा और वर्ग–चेतना के माध्यम से समानता तथा न्याय की भावना को बल दिया। गोदान में प्रेमचंद का दृष्टिकोण यह था कि जब तक समाज में श्रम को सम्मान और मनुष्य को अधिकार नहीं मिलेगा तब तक कोई भी सुधार अधूरा रहेगा। प्रेमचंद के समाज–सुधार की विशेषता यह थी कि वह किसी विचारधारा के अनुयायी होकर नहीं अपितु मानवीय करुणा–नैतिक संवेदना से प्रेरित होकर सामने आई। उन्होंने धार्मिक अंधविश्वास, पाखंड और परंपरागत बंधनों के विरुद्ध तर्क और मानवता का पक्ष लिया। उनका सुधारवाद व्यवहारिक था, आदर्शवादी नहीं वे सुधार की प्रक्रिया को समाज के भीतर से उत्पन्न परिवर्तन मानते थे। उन्होंने यह भी माना कि साहित्य तभी सार्थक है जब वह जनमानस में नैतिक चेतना जगाए साथ ही समानता, स्वतंत्रता तथा बंधुत्व की भावना को प्रबल करे। उनके पात्र चाहे सुमन हों, अमर हों, सूरदास हों या होरी सभी उस समाज की अंतः चेतना के प्रतिनिधि हैं जो अन्याय के खिलाफ खड़ी होती है। यही कारण है कि प्रेमचंद का साहित्य आज भी सामाजिक न्याय एवं नैतिक मानवता की बहसों में उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था। वे केवल कथाकार नहीं बल्कि अपने युग के नैतिक शिक्षक और समाज–संशोधक थे, जिन्होंने साहित्य के माध्यम से भारतीय समाज को आत्मावलोकन का दर्पण दिखाया।

प्रेमचंद के पात्रों में समाज–सुधार का जीवंत रूप

प्रेमचंद के पात्र उनके साहित्य में समाज–सुधार की चेतना के सबसे जीवंत प्रतीक हैं। उन्होंने अपने पात्रों का निर्माण कथा की आवश्यकता के आधार पर नहीं अपितु समाज के नैतिक और वैचारिक पुनर्गठन के उद्देश्य से किया। उनके पात्र आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी हैं क्योंकि वे जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से जन्म लेते हैं जिनमें मानवीय कमजोरियाँ भी हैं परंतु इन्हीं कमजोरियों में सुधार और परिवर्तन की संभावनाएँ निहित हैं। प्रेमचंद ने पात्रों के माध्यम से यह दिखाया कि समाज–सुधार कोई बाहरी आंदोलन नहीं अपितु व्यक्ति के भीतर से उत्पन्न नैतिक जागृति है। इस दृष्टि से गोदान का होरी, सेवासदन की सुमन, निर्मला की नायिका तथा रंगभूमि का सूरदास उनके सुधारवादी यथार्थवाद के प्रखर प्रतीक हैं। गोदान (1936) का होरी भारतीय किसान का आदर्श और यथार्थ दोनों है वह परंपरा एवं आस्था में बँधा हुआ है किंतु उसके भीतर नैतिक चेतना गहरी है। वह शोषण, गरीबी और कर्ज़ के बोझ तले दबा हुआ होते हुए भी ईमानदारी तथा कर्तव्यनिष्ठा नहीं छोड़ता। प्रेमचंद ने होरी को समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधि बनाया जो अपनी मेहनत और आस्था से राष्ट्र का आधार है लेकिन जिसे सत्ता–व्यवस्था निरंतर कुचलती रहती है। होरी की मृत्यु केवल एक किसान की नहीं बल्कि उस नैतिकता की भी प्रतीक है जो अन्याय के बावजूद सत्य और धर्म से विचलित नहीं होती (द्विवेदी, 1963)। सेवासदन (1918) की सुमन प्रेमचंद के सुधारवादी दृष्टिकोण का स्त्री–रूप है। वह सामाजिक बंधनों, गरीबी, नैतिक पाखंड आदि की शिकार होती है लेकिन अंततः आत्मबोध के माध्यम से अपने जीवन का पुनर्निर्माण करती है। सुमन का परिवर्तन व्यक्तिगत मोक्ष नहीं उस स्त्री चेतना का संकेत है जो अपने अस्तित्व को समाज द्वारा परिभाषित नैतिकता के बाहर स्थापित करने का साहस रखती है। प्रेमचंद ने सुमन के माध्यम से यह दिखाया कि स्त्री का उद्धार समाज के पुरुषप्रधान दृष्टिकोण में नहीं अपितु उसकी आत्म–जागरूकता में है। इसी तरह निर्मला (1926) की नायिका उस भारतीय स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शिकार है किंतु प्रेमचंद उसे केवल पीड़िता के रूप में नहीं प्रस्तुत करते वह सहानुभूति और नैतिक दृढ़ता का प्रतिरूप है। बाल–विवाह, दहेज और पारिवारिक अन्याय के बावजूद निर्मला अपने कर्तव्यबोध एवं मानवीय संवेदना को नहीं छोड़ती। वह प्रेमचंद की उस सामाजिक दृष्टि की प्रतीक है जिसमें स्त्री को करुणा मात्र का नहीं अपितु नैतिक शक्ति का प्रतीक माना गया है। रंगभूमि (1932) का सूरदास इस चेतना को और व्यापक स्तर पर ले जाता है। सूरदास अंध, निर्धन, समाज द्वारा उपेक्षित व्यक्ति है फिर भी उसमें आत्मबल, सत्य एवं अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की अदम्य शक्ति है। प्रेमचंद ने सूरदास के माध्यम से यह दिखाया कि समाज–सुधार केवल शिक्षित वर्ग का कार्य नहीं, वह नैतिक ऊर्जा है जो शोषित और कमजोर व्यक्ति के भीतर भी विद्यमान है। सूरदास का संघर्ष भूमि, श्रम, आत्मसम्मान आदि की रक्षा हेतु है वह आधुनिकता और पूंजीवाद के सामने उस मानवीय मूल्य की आवाज़ है जो अन्याय से समझौता नहीं करता (आहूजा, 1980)। इन पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे स्थिर अथवा एकरेखीय नहीं हैं अपितु जीवन की परिस्थितियों में निरंतर विकसित होते हैं। उनके भीतर परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है यही परिवर्तन प्रेमचंद के समाज–सुधार का वास्तविक स्वर है। वे किसी मत अथवा विचारधारा के कठपुतले नहीं बल्कि उस समाज की जीवंत चेतना हैं जो अपने भीतर से सुधार की प्रक्रिया को जन्म देता है। प्रेमचंद के पात्रों में हम देखते हैं कि समाज–सुधार कोई अमूर्त विचार नहीं जीवन के अनुभवों से उपजा यथार्थ है। इन पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद ने यह सिद्ध किया कि साहित्य तभी प्रभावशाली होता है जब वह मानवीय संघर्षों में नैतिक दिशा खोजे। इस प्रकार होरी की नैतिकता, सुमन की आत्म–जागरूकता, निर्मला की करुणा और सूरदास का प्रतिरोध आदि ये सभी मिलकर प्रेमचंद के सुधारवादी यथार्थवाद की आधारशिला बनते हैं। उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से समाज में न्याय, समानता और मानवता की स्थापना का संदेश दिया और साहित्य को जीवन और परिवर्तन का माध्यम बना दिया।

निष्कर्ष

प्रेमचंद के यथार्थवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह केवल समाज का प्रतिबिंब प्रस्तुत नहीं करता बल्कि उसे बदलने की प्रेरणा भी देता है। उनके लिए साहित्य का उद्देश्य केवल जीवन का चित्रण मात्र करना नहीं अपितु इसके साथ ही जीवन को दिशा देना था। उन्होंने साहित्य को सामाजिक जिम्मेदारी का एक सशक्त माध्यम बनाया जहाँ शब्द केवल सौंदर्य अथवा अभिव्यक्ति का साधन नहीं रहे बल्कि परिवर्तन की चेतना के वाहक बन गए। उनके उपन्यासों में व्यक्ति तथा समाज के बीच गहरे अंतः संबंध दिखाई देते हैं व्यक्ति न तो समाज से अलग है, न ही समाज व्यक्ति से; दोनों एक–दूसरे को गढ़ते एवं प्रभावित करते हैं। प्रेमचंद ने अपने पात्रों के माध्यम से यह दिखाया कि मनुष्य का संघर्ष व्यक्तिगत नहीं सामाजिक–नैतिक भी है। उनके साहित्य में नैतिक मूल्यों की पुनर्व्याख्या होती है जहाँ धर्म, सत्य, त्याग, न्याय आदि को सामाजिक समानता तथा मानवीय संवेदना के आधार पर परिभाषित किया गया है। यही कारण है कि गोदान का होरी, सेवासदन की सुमन, निर्मला और रंगभूमि का सूरदास, सब अपने–अपने स्तर पर सामाजिक परिवर्तन के प्रतीक बन जाते हैं। प्रेमचंद का यथार्थवाद परिवर्तनशील है क्योंकि वह स्थिर जीवन की तस्वीर नहीं खींचता आपितु इसके साथ ही समाज में जागृति, करुणा और आत्मावलोकन का संदेश देता है।

जैसा कि रामविलास शर्मा ने लिखा है "प्रेमचंद का साहित्य हमें यह सिखाता है कि यथार्थ को पहचानना ही नहीं, उसे बदलना भी हमारा दायित्व है।" उनके लेखन में मानव जीवन की जटिलताओं के बीच जो करुणा, विवेक और सुधार की भावना है, वह उन्हें केवल एक महान कथाकार नहीं, एक 'साहित्यिक समाजशास्त्री' बनाती है। प्रेमचंद का यथार्थवाद आज भी हिन्दी साहित्य की दिशा निर्धारित करता है क्योंकि उसमें जो नैतिक गहराई, सामाजिक दृष्टि और मानवीयता का आलोक है वह हर युग में प्रासंगिक रहेगा। उनके साहित्य ने यह सिद्ध कर दिया कि यथार्थ का चित्रण तभी सार्थक है जब उसमें समाज के परिवर्तन की आकांक्षा भी निहित हो। इसीलिए प्रेमचंद केवल अपने समय के नहीं बल्कि हर उस समय के लेखक हैं जहाँ मनुष्य और समाज के बीच संतुलन की खोज अभी बाकी है।

संदर्भ–सूची

1. आहुजा, जी. एन. (1980). प्रेमचंद का काल्पनिक संसार. पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस।
2. अग्रवाल, रामचन्द्र. (1982). प्रेमचंद के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन. भारती भवन।
3. द्विवेदी, हरिवंश प्रसाद. (1963). प्रेमचंदः व्यक्तित्व और कार्य. लोकभारती प्रकाशन।
4. गुप्ता, चंद्रिका. (2000). औपनिवेशिक भारत में साहित्य और राष्ट्रीय चेतना. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. मेहरोत्रा, अरविन्द कृष्ण. (2003). भारतीय साहित्य का इतिहास (अंग्रेज़ी परिप्रेक्ष्य में). कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. मित्रा, डी. पी. (2025). भारतीय समाज में विवाह, परिवार एवं स्नेह का अलगावः परंपरा, आधुनिकता तथा भावनात्मक संकट. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज़ एंड एजुकेशन रिसर्च. https://doi.org/10.33545/26649799.2025.V7.I2E.281
7. शर्मा, रामविलास. (1953). प्रेमचंद और उनका युग. राजकमल प्रकाशन।
8. शर्मा, एस. के. (1979). प्रेमचंद का यथार्थवाद. विकास पब्लिशिंग।
9. मित्रा, डी. पी. (2025). गालियों का समाजशास्त्र. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज़ एंड एजुकेशन रिसर्च https://doi.org/10.33545/26649799.2025V7.I1C.156
10. सिंह, नागेन्द्र. (1971). प्रेमचंद के सामाजिक आदर्श. राजपाल एंड संस।
11. प्रेमचंद. (1918). सेवासदन. सरस्वती प्रेस।
12. प्रेमचंद. (1926). निर्मला. सरस्वती प्रेस।
13. प्रेमचंद. (1932). कर्मभूमि. सरस्वती प्रेस।
14. प्रेमचंद. (1932). रंगभूमि. सरस्वती प्रेस।
15. प्रेमचंद. (1936). गोदान. सरस्वती प्रेस।